किनारे बैठी बत्तख की सुरक्षा की रणनीति

१३ दिसंबर, २००१ – यह वो दिन था जब संसद भवन पर आक्रमण हुआ था। मुट्ठी भर सुरक्षाकर्मियों की वीरता तथा प्रभु की कपा के कारण भारतीय लोकतंत्र बच गया। इस संकट की घड़ी में भी मीडिया और उस पर छाये रहने वाले महानुभावों ने राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति जो लापरवाही दिखाई, वह आश्चर्यजनक थी। सभी संवैधानिक प्रमुखों एवं सांसदों की प्रत्येक हलचल की विस्तृत सूचना टेलीविजन पर इस तरह प्रसारित की जा रही थी, मानों आतंकवादियों को आमंत्रित किया जा रहा हो। हमले के अगले दिन सब कुछ सामान्य हो गया। विपक्षी दल सुरक्षा खामियों के लिए सरकार पर दोषारोपण करने लगे तथा सत्तारूढ़ दल पाकिस्तान के विरोध में चिल्लाने लगे।

सर्वोच्च नेतृत्व द्वारा जिस प्रकार का हल्ला मचाया गया, उससे एकबारगी लगा कि पाकिस्तान से युद्ध होने ही वाला है। अब ऐसा लगता है कि सौभाग्य से युद्ध टल गया है। भारत में जनता और नेताओं का युद्ध के प्रति ठीक वैसा ही नजरिया है जैसा क्रिकेट के मैचों के प्रति है। दर्शक मानसिकता से ग्रसित होने के कारण सुरक्षा संबधी विषयों को समुचित गंभीरता से नहीं लिया जाता। सेना को छोड़, बाकी सब की दष्टि में सामरिक रणनीति संबंधी समझ का नितांत अभाव साफ झलकता है।

भारत में ऐसा माना जाता है कि सामरिक दृष्टि केवल सैन्य बलों का ही कार्यक्षेत्र है। यह नहीं समझा जाता कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों के अनेक निर्णय राष्ट्रीय सुरक्षा के ढाँचे को प्रभावित करते हैं। विद्युत उत्पादन, सड़क, कृषि उत्पादन, रेलवे, जल व्यवस्था, दूरसंचार, केबल टेलीविजन, समाचारपत्र, विद्यालय, महाविद्यालय और भारतीय नागरिकों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली हर व्यवस्था का सामरिक महत्व है। कहा जाता है कि शीतयुद्ध के दौरान पश्चिमी जर्मनी के नियंत्रण वाले बर्लिन में इतनी मात्रा में टूथपेस्ट का भंडारण किया जाता था कि घेरे जाने पर नगर को एक वर्ष तक कोई दिक्कत न हो। टूथपेस्ट के इस भंडार को ताजा रखने के लिए ऐसी व्यवस्था बनाई गयी थी कि नगर में भंडारगह से निकली एक वर्ष पुरानी टूथपेस्ट ही बिकती थी। जर्मनी ने टूथपेस्ट के सामरिक महत्व को समझा था। आश्चर्य यह है कि भारत में कुछ ऐसे केन्द्रीय मंत्री हैं जो हवाई अड्डों पर माल ढुलाई को भी सामरिक महत्व से संबंधित विषय नहीं मानते। अभी कुछ माह पूर्व भारत सरकार के विचाराधीन एक प्रस्ताव था जिसके तहत अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डों पर कुछ अतिमहत्त्वपूर्ण कार्यों को एक ऐसी विदेशी संस्था को सौंपा जा रहा था जिसके अधिकतर कर्मचारी पाकिस्तानी हैं। सौभाग्य से रक्षा मंत्रालय ने विरोध किया और प्रस्ताव त्यागना पड़ा।

ऐसा प्रतीत होता है कि सुरक्षा की भारत सरकार की अवधारणा में खाद्य सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा इत्यादि का समावेश नहीं है। राजनैतिक नेतृत्व सैन्य बलों पर अपना नियन्त्रण तो रखना चाहता है परन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा के संबंध में अपनी जिम्मेदारी एंव भूमिका को स्वीकार नहीं करता। संभवतः राजनैतिक नेतृत्व ने अपने लिए केवल एक ही भूमिका तय कर रखी है – बयानबाजी करने की।

© All Rights Free

इसे कोरी बयानबाजी ही कहा जाएगा कि हमारे नेता बिना सोचे समझे बार–बार दोहरा रहे हैं कि देश नाभिकीय सहित किसी भी प्रकार के युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार है। नाभिकीय अस्त्रों के बारे में रत्ती भर ज्ञान रखने वाले स्कूली बच्चे को भी उक्त दावा मूर्खतापूर्ण एवं हास्यास्पद प्रतीत होगा। पर अफसोस कि हमारे सर्वोच्च नेतृत्व ने १३ दिसंबर के पहले भी तथा बाद में भी पूरे जोश–ओ–खरोश के साथ ऐसे वक्तव्य दिए।

आइए, हम परमाणु बम के हमले के संदर्भ में एक संभावित परिदृश्य की कल्पना करें। भारतीय राज्यसत्ता के समस्त संवैधानिक प्रमुख दिल्ली में लगभग तीन किलोमीटर गुणा तीन किलोमीटर के क्षेत्र में निवास करते हैं। यदि उपयुक्त समय का चुनाव कर शत्रु रायसीना हिल (दिल्ली) पर एक नाभिकीय बम गिराता है, तो पलक झपकते ही भारत के सभी संवैधानिक प्रमुख धराशाही हो जाएंगें। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सभी मंत्री, अधिकतर सांसद, सर्वोच्च न्यायालय के लगभग सभी न्यायाधीश, सभी सेना प्रमुख, मुख्य चुनाव आयुक्त सहित भारत सरकार में संवैधानिक अधिकारसंपन्न लगभग प्रत्येक व्यक्ति एक झटके में सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाएगा। यदि आपको यह कुछ अतिश्योक्तिपूर्ण लग रहा है, तो कृपया सोचें कि यदि तेरह सितम्बर को संसद में किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर बहस हो रही होती तथा आतंकवादियों की कार में रखे आरडीएक्स में विस्फोट हो जाता तो उपरोक्त अधिकारियों में से एक बड़ी संख्या शहीद हो गयी होती। और यदि कार में आरडीएक्स के स्थान पर नाभिकीय विस्फोटक होता तो संसद के सत्रावसान के बावजूद उपरोक्त सभी संवैधानिक प्रमुख प्रभु को प्यारे हो गये होते। यह परिदृश्य एक भयावह दुःस्वपन के समान है, जिसकी कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर यही तो आतंकवादी एवं पाकिस्तान में बैठे उनके आका चाहते हैं – सभी लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्थाओं का पूर्ण विनाश। १३ दिसम्बर तथा ११ सितम्बर के अपने घिनौने कृत्यों से उन्होंने अपने इरादों को स्पष्ट कर दिया है। यदि हम फिर भी न संभलें तो गलती हमारी है।

११ सितम्बर की घटना के बाद से अमरीकी उपराष्ट्रपति गुप्त स्थान पर रह रहे हैं और किसी भी बाहरी व्यक्ति से नहीं मिल रहे। अपनी हाल की अमरीका यात्रा के समय लालकृष्ण आडवाणी अमरीकी उपराष्ट्रपति से वीडियो कॉंफ्रेन्स के माध्यम से ही मुलाकात कर सके। अमरीका इस समय आतंकवाद के विरुद्ध युद्धरत है। वह नहीं चाहता कि युद्ध में उसके राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति दोनों पर एक साथ कोई खतरा आए।

इसकी तुलना करें अभी आए इस समाचार से कि भारतीय प्रधानमंत्री के निवास स्थान पर एक बंकर का निर्माण किया जा रहा है। क्या सीधे परमाणु हमले की स्थिति में प्रधानमंत्री के पास बंकर में जाने के लिए पर्याप्त समय होगा? या फिर दिल्ली के वीवीआईपी समुदाय में बंकर एक नये स्टैटस सिंबल के रूप में उभरने वाला है? आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध में भारत अग्रणी पंक्ति का देश है। भारत इस दानव से अमरीका के मुकाबले बहुत अधिक प्रभावित है। फिर भी भारतीय राज्यसत्ता की प्रतिक्रिया में सामरिक दृष्टिकोण का नितांत अभाव है। इजरायल को छोड़ विश्व के किसी राष्ट्र के सम्मुख ऐसे खतरे नहीं हैं जैसे भारत के सम्मुख हैं। अफसोस यह है कि इन खतरों से जूझने के लिए कोई अन्य देश भारत से कम तैयार भी नहीं है।

दुखःद सच तो यह है कि रायसीना हिल पर केन्द्रित भारतीय संवैधानिक व्यवस्था की स्थिति कुछ उसी प्रकार की है जैसी तालाब किनारे बैठी लंगड़ी बत्तख की होती है। लाहौर स्थित प्रक्षेपास्त्रों की पहुँच के

अंदर तथा फिदायीन हमलों से आशंकित रायसीना हिल प्रभु से प्रार्थना करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकती। भारतीय सैन्य बल युद्ध लड़ सकते हैं और जीत सकते हैं। पर विश्व की कोई भी सेना नुकसान न होने की गारंटी नहीं दे सकती। यदि पाकिस्तान नाभिकीय अस्त्रों से आक्रमण करता है तथा भारत के सभी संवैधानिक प्रमुखों को समाप्त कर देता है, तो भी भारतीय सेना युद्ध में विजयी हो सकती है और पाकिस्तान का विनाश कर सकती है। पर क्या ऐसी विभीषिका के बाद भारत एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में उभर पाएगा? क्या इस प्रकार का जोखिम उठाना उचित है? क्या यह समझदारी की बात नहीं है कि देश के विशाल आकार का लाभ उठाकर भारत की संवैधानिक व्यवस्था पर मंडराते खतरों को कम किया जाए?

यह तर्कसंगत प्रतीत होता है कि देश की राजधानी को दिल्ली के बाहर फैला दिया जाए। अब समय आ गया है कि राजधानी की पारंपरिक अवधारणा को त्याग सत्ता के ऐसे ढाँचे को अपनाया जाए जो भौगोलिक रूप से एक नगर में केन्द्रित न हो। लोकसभा तथा राज्यसभा का भिन्न नगरों में स्थित होना उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए लोकसभा भवन दिल्ली में हो सकता है जबकि राज्यसभा की बैठकें चेन्नई में हो सकती हैं। उच्चतम न्यायालय को किसी अन्य शहर जैसे भोपाल में स्थानान्तरित किया जा सकता है। सैन्य बलों के मुख्यालय को किसी तीसरे नगर जैसे नागपुर में आधारित किया जा सकता है। राष्ट्रपति राज्यप्रमुख होने के कारण दिल्ली में रहें, पर उपराष्ट्रपति चेन्नई में रह सकते हैं। प्रधानमंत्री तथा मंत्रीपरिषद किसी अन्य नगर जैसे कोलकाता से कार्य कर सकते हैं। संवैधानिक प्रमुखों के इस प्रकार के भौगोलिक फैलाव से किसी भी शत्रु के लिए भारतीय राजसत्ता को एक झटके में समाप्त करना असंभव हो जाएगा। इस से कुछ अन्य लाभ ही होंगें। इस से दिल्ली से दूर स्थित क्षेत्रों में दूरी तथा अलगाव की भावना में कमी होगी जिससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही इससे दिल्ली की अधोसंरचना पर दबाव कम होगा और दिल्ली एक जीवन व्यतीत करने योग्य नगर के रूप में जीवित रह पाएगा।

हाँ, यह मानना पड़ेगा कि उपरोक्त हल कोई आसान मार्ग नहीं है। पर देश को विक्षिप्त वहशियों से बचाना सरल कार्य हो भी नहीं सकता। प्रश्न यह है कि क्या भारत के नेता इस चुनौती का सामना करने हेतु सक्षम हैं? क्या टीवी पर अपना चेहरा देखने के मोह से आगे बढ़ कर हमारे नेता कुछ गंभीर चिंतन कर पाएँगें? क्या वे अपने आपसी झगड़ों तथा हितों से ऊपर उठ सकेंगें? आशा करें कि भारत का राजनैतिक नेतृत्व यह समझ पाएगा कि सामरिक सुरक्षा का अर्थ केवल कुछ बंदूकधारी नियुक्त करना या कुछ बंकर बनाना नहीं होता। यह भी आशा करें कि लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता तथा उदारवाद पर आधारित हमारी संवैधानिक व्यवस्था रायसीना हिल पर बैठी लंगड़ी बत्तख नहीं रहेगी।

अनिल चावला

२१ जनवरी, २००२